दैनिक जागरण

Date:09-06-23

दोहरी मार का शिकार हिंदी भाषी परीक्षार्थी

डा. विजय अग्रवाल, (लेखक पूर्व सिविल सेवक हैं)

पिछले दिनों संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी) द्वारा आयोजित सिविल सेवा परीक्षा का परिणाम आया। पहले के वर्षों के विपरीत इस बार हिंदीभाषी परीक्षार्थियों में खुशी देखी गई। इसका कारण रहा कुल 933 सफल उम्मीदवारों में से 54 उन विद्यार्थियों का सफल होना, जिन्होंने परीक्षा के माध्यम के रूप में हिंदी भाषा का चयन किया था। यदि इसमें अन्य भारतीय भाषाओं में सफल होने वाले युवाओं की संख्या को जोड़ दें तो यह 75 के करीब हो जाती है। यानी कुल का करीब आठ प्रतिशत, जिसे अब तक की रिकार्ड सफलता कहा जा रहा है। यहां यह बताना जरूरी है कि सफलता के ये आंकड़े आधिकारिक नहीं, क्योंकि संघ लोक सेवा आयोग इस तरह का कोई अधिकृत आंकड़ा उपलब्ध नहीं कराता। आयोग अपनी वार्षिक रिपोर्ट में इस परीक्षा से जुड़े हुए न जाने कितने तरह के आंकड़े प्रकाशित करता है, जैसे कि सफल उम्मीदवारों की आयु, उनकी शैक्षणिक पृष्ठभूमि, विश्वविद्यालय, प्रयासों की संख्या, जाति, लिंग और विषय आदि-इत्यादि, लेकिन न जाने क्यों वह यह बताने से परहेज करता है कि सफल होने वालों में कितने-कितने युवा किन-किन भाषा माध्यमों के रहे हैं? आयोग यह भी नहीं बताता कि कितने युवा ऐसे रहे, जिनकी मुख्य परीक्षा में कापियां इसलिए नहीं जांची गईं, क्योंकि वे अनिवार्य अंग्रेजी विषय में उत्तीर्ण होने लायक नंबर प्राप्त नहीं कर सके, जबकि यह सब आसानी के साथ किया जा सकता है।

जब वार्षिक रिपोर्ट में यह बताया जाता है कि मुख्य परीक्षा में कितने-कितने युवाओं ने किस-किस भाषा को माध्यम के रूप में चुना है, तब फिर इसके अंतिम रूप को प्रकाशित करने में हिचक क्यों है? समझ में नहीं आता। यह गोपनीयता मन में कही न कहीं संदेह की भावना तो पैदा करती है। क्या आयोग इस संदेह को दूर करने के लिए कोई कदम उठाएगा? सिविल सेवा परीक्षा में हिंदी भाषा में सफल युवाओं की संख्या इस बार पिछले वर्ष की तुलना में दोगुनी है। इसलिए खुशी होना स्वाभाविक है, लेकिन जब दिमाग में यह तथ्य उभरता है कि वर्ष 1979 से ही भारतीय भाषाओं को इसके लिए अनुमति दे दी गई है तो अंदर उदासी और चिंता की एक लहर सी पैदा हो जाती है कि चार दशक से भी अधिक की यात्रा में यह कहां तक पहुंच पाई है? निश्चित रूप से सिविल सेवा परीक्षा में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में सफलता का यह जो दयनीय प्रतिशत है, उसके अपने सामाजिक और आर्थिक कारण हैं। इन पर काफी विचार होते रहे हैं। इन कारणों की जड़ें इतनी गहरी हैं कि उन्हें उखाड़ फेंकना इतना आसान नहीं है, लेकिन जब बात प्रणाली की आती

है, जो किसी संस्था द्वारा लागू की जाती है, तब उस संस्था के उद्देश्य एवं उसकी पद्धति का संदेह से परे होना आवश्यक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य होता है।

हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति आयोग का जो रुख है, दुर्भाग्य से वह संदेहास्पद है। इसका पहला और सबसे अधिक चिंताजनक एवं खतरनाक पहलू प्रश्न-पत्रों में उपयोग में लाई जा रही भाषा है। प्रश्न पत्र अंग्रेजी में तैयार होते हैं। फिर उनका हिंदी में अनुवाद कराया जाता है। सवाल यह नहीं है कि प्रश्न पत्र हिंदी में ही तैयार क्यों नहीं कराए जाते? सवाल यह है कि जो अनुवाद कराया जा रहा है, वह कैसा है? कौन उसे अनुवाद कर रहा है? क्या वह अनुवाद समझ में आने वाला है? बेहतर होगा कि हम यूपीएससी की हिंदी का एक नूमना यहां देख लें। यह अंश गत 28 मई को हुई प्रारंभिक परीक्षा के प्रश्न पत्र से है। एक कथन है 'बैलिस्टिक मिसाइल अपनी पूरी उड़ान में अध्वनिक चाल पर प्रचार-नोदित होती है।'

हिंदी के परीक्षार्थियों के सामने पहली सबसे बड़ी चुनौती यह होती है कि वे इस भाषा को समझें। कोचिंग देने वालों के पास इस समस्या का तोड़ इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं होता कि 'यदि हिंदी समझ में नहीं आ रही हो तो अंग्रेजी वाले अंश से समझने की कोशिश करो।' लेकिन क्या यह सुझाव व्यावहारिक है? यदि इन्हें अंग्रेजी आ रही होती तो वे अंग्रेजी को ही अपना माध्यम बनाते न। और यदि हम यह मान लें कि 'इतनी तो आ ही रही होगी', या 'इतनी तो आनी ही चाहिए' तो क्या उनके पास इतना समय होता है कि वे ऐसा करें। 120 मिनट में 100 प्रश्न हल करने होते हैं। प्रश्न इतने लंबे और जटिल होते हैं कि एक-एक क्षण कीमती होता है। यदि वे हिंदी और अंग्रेजी दोनों को लेकर चलेंगे तो प्रश्न पूरा कर ही नहीं पाएंगे। एक बात और, जो हिंदी भाषियों से जुड़ी हुई है। भले ही कोई अपनी भाषा (संविधान की आठवीं अनुसूची में दर्ज) का माध्यम चुने, उसे प्रश्न पत्र हिंदी और अंग्रेजी में ही पढ़ने होंगे। जाहिर है कि यदि इन्हें अंग्रेजी आ रही होती तो वे उसे ही माध्यम बनाते। ऐसे में उनका भरोसा हिंदी पर ही होता है और 'गूगल महाशय' की हिंदी ऐसी है कि अच्छे-अच्छे हिंदी के विद्वानों की समझ में न आए। ऐसे में ये युवा अभ्यर्थी भाषाई स्तर पर दोहरी मार का शिकार हो जाते हैं। यहां संघ लोक सेवा आयोग साफ-साफ भाषाई भेदभाव करता हुआ नजर आता है। क्या सचमुच अनुवाद की समस्या का कोई हल नहीं है, जो लाखों युवाओं के भविष्य को दांव पर लगा रही है? जब तक इस समस्या का हल नहीं ढूंढ़ा जाता, तब तक इस परीक्षा में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम वाले उम्मीदवारों की संख्या का बढ़ना संभव नहीं है।

Date:09-06-23

देशहित में नहीं राजद्रोह कानून का खात्मा

सुरेंद्र किशोर, (लेखक राजनीतिक विश्लेषक एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

देश में अक्सर यह बहस जोर पकड़ने लगती है कि अब राजद्रोह कानून को विदाई दे दी जाए। इसी शाश्वत बहस के बीच बीते दिनों विधि आयोग की ताजा रपट में इस कानून को बनाए रखने की अनुशंसा की गई है। देश की एकता और अखंडता के लिए इस कानून की आवश्यकता रेखांकित करते हुए विधि आयोग ने कहा है कि इस कानून में कुछ संशोधन किए जा सकते हैं। इस सिलसिले में निर्धारित सजा को बढ़ाने की बात भी उसने की है। स्वाभाविक है कि ऐसी सिफारिश

के बीच राजद्रोह कानून विरोधी लाबी को नए सिरे से अपना विरोध करने का अवसर मिल गया है, लेकिन सामान्य समझ वाला कोई भी व्यक्ति सहजता से यह देख सकता है कि संप्रति देश में राजद्रोही मंशा एवं मनोवृत्ति वाले तत्वों की संख्या बढ़ती जा रही है। ऐसे में इस कानून की समाप्ति राष्ट्रीय हितों के प्रति बड़ा आघात होगी। इस रिपोर्ट के संदर्भ में केंद्रीय कानून मंत्री अर्जुन मेघवाल ने कहा कि विधि आयोग की सिफारिश बाध्यकारी नहीं है और हम सभी हितधारकों से विचार-विमर्श के बाद ही राजद्रोह कानून पर कोई अंतिम फैसला करेंगे।

वर्तमान में राष्ट्रीय सुरक्षा के मोर्चे पर नई चुनौतियों ने दस्तक दी है और सरकार इससे जुड़ी समस्याओं का समाधान निकालने के लिए हरसंभव प्रयास कर रही है। इसमें न्यायिक तंत्र से भी आवश्यक सहयोग अपेक्षित है कि वह सामान्य अपराध और आतंकी अपराधों के बीच फर्क करें। राजद्रोह कानून की समाप्ति के पीछे सबसे बड़ा तर्क इसके दुरुपयोग का दिया जाता है। नि:संदेह, दुरुपयोग रोकने के उपाय होने चाहिए, लेकिन याद रहे कि सिरदर्द होने पर सिर को तो नहीं काटा जाता। आखिर किस कानून का दुरुपयोग नहीं होता? फिर राजद्रोह कानून की समाप्ति पर इतना जोर क्यों? खुद सुप्रीम कोर्ट ने पूर्व में यह कहा कि राजद्रोह कानून के दुरुपयोग को लेकर उसने 1962 में जो दिशानिर्देश दिया, वह आज भी उससे सहमत है। हालांकि, राजद्रोह कानून को लागू करने पर रोक से संबधित हालिया फैसले से विचित्र स्थिति उत्पन्न हो रही है। उम्मीद है कि केंद्र सरकार संबंधित पक्षों से मंत्रणा कर देशहित में सुप्रीम कोर्ट को ताजा स्थिति से अवगत कराएगी, क्योंकि राष्ट्रीय सुरक्षा की प्राथमिक जिम्मेदारी केंद्र सरकार की ही है।

राजद्रोह कानून पर केंद्र सरकार किस तरह आम सहमति बनाती है, यह तो भविष्य के गर्भ में है, लेकिन इस कानून से जुड़े कुछ विवादों पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि किसी भी देश के लिए इस प्रकार का कानून कितना आवश्यक है। इस संदर्भ में सुप्रीम कोर्ट के 1962 के एक फैसले को याद करना उपयोगी होगा। 26 मई, 1953 को बिहार के बेगूसराय में एक रैली हो रही थी। फारवर्ड कम्युनिस्ट पार्टी के नेता केदारनाथ सिंह रैली को संबोधित कर रहे थे। सरकार के विरुद्ध कड़े शब्दों का उपयोग करते हुए उन्होंने कहा, 'सीआइडी के कुत्ते बरौनी में चक्कर काट रहे हैं। कई सरकारी कुत्ते यहां इस सभा में भी हैं। जनता ने अंग्रेजों को यहां से भगा दिया। कांग्रेसी कुत्तों को गद्दी पर बैठा दिया। इन कांग्रेसी गुंडों को भी हम उखाड़ फेंकेंगे।' ऐसे उत्तेजक एवं अमर्यादित भाषण के लिए बिहार सरकार ने केदारनाथ सिंह के खिलाफ राजद्रोह का मुकदमा दायर किया। केदारनाथ सिंह ने पटना हाई कोर्ट की शरण ली। हाई कोर्ट ने मामले की सुनवाई पर रोक लगा दी। बिहार सरकार सुप्रीम कोर्ट चली गई। सुप्रीम कोर्ट ने राजद्रोह से संबंधित आइपीसी की धारा को परिभाषित किया। 20 जनवरी, 1962 को मुख्य न्यायाधीश बीपी सिन्हा की अध्यक्षता वाली संविधान पीठ ने कहा, 'राजद्रोही भाषणों और अभिव्यक्ति को सिर्फ तभी दंडित किया जा सकता है, जब उसकी वजह से किसी तरह की हिंसा, असंतोष या फिर सामाजिक आक्रोश बढ़े।' चूंकि केदारनाथ सिंह के भाषण से ऐसा कुछ नहीं हुआ था, इसलिए सुप्रीम कोर्ट ने केदारनाथ सिंह को राहत दे दी।

हालांकि, राजद्रोह के सभी मामले केदारनाथ सिंह सरीखे नहीं होते। जैसे कि फरवरी 2016 में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय यानी जेएनयू परिसर में हुआ भारत विरोधी आयोजन। उसमें कश्मीरी आतंकी अफजल गुरु की बरसी मनाई जा रही थी। भारत की बर्बादी के नारे लगाए जा रहे थे। नारा लगाने वाले जेएनयू में थे और इस आयोजन के कर्ताधर्ता कश्मीर में। राजद्रोह का मामला दर्ज हुआ, लेकिन विडंबना देखिए कि दिल्ली में सत्तारूढ़ आम आदमी पार्टी ने मामला चलाने की अनुमति देने में एक साल का समय लगा दिया। मामला अभी भी अदालत में लंबित है। यह भी कोई संयोग नहीं कि आम आदमी पार्टी भी राजद्रोह कानून की समाप्ति के पक्ष में है। सवाल वोट बैंक का जो है। अब तो पापुलर फ्रंट आफ इंडिया यानी पीएफआइ भी देश में बड़े पैमाने पर सक्रिय है। उसके पास से मिले साहित्य से स्पष्ट है

कि उसका घोषित लक्ष्य है कि 2047 तक हथियारों के बल पर इस देश में इस्लामिक शासन कायम कर देना है। राजद्रोह कानून के अभाव में ऐसे तत्वों से निपटना आसान नहीं।

किसी भी कानून के कार्यान्वयन पर रोक लगाने वाले सुप्रीम कोर्ट के सामने जब पूरे तथ्य आ जाते हैं तो अक्सर वह अपना पिछला निर्णय भी बदल देता है। जैसे सुप्रीम कोर्ट ने आपातकाल के दौरान अपने एक चर्चित निर्णय से स्वयं को अलग कर लिया था। यह निर्णय बंदी प्रत्यक्षीकरण से जुड़ा था। तब सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि आपातकाल में कोई नागरिक अपने मौलिक अधिकारों की मांग नहीं कर सकता। उल्लेखनीय है कि मौलिक अधिकारों में जीवन का अधिकार भी शामिल है। तब केंद्र सरकार के वकील नीरेन डे ने सुप्रीम कोर्ट में कहा था कि यह आपातकाल ऐसा है, जिसके दौरान यदि शासन किसी की जान भी ले ले तो उस हत्या के विरुद्ध अदालत की शरण नहीं ली जा सकती। सुप्रीम कोर्ट ने तब नीरेन डे की बात पर मुहर लगा दी थी। वहीं, जब आपातकाल का आतंक समाप्त हुआ तो सुप्रीम कोर्ट को अपने उस निर्णय पर पछतावा हुआ। ऐसी उदारता इस देश के सुप्रीम कोर्ट में मौजूद है। ऐसे में, राजद्रोह के मामले में भी शीर्ष अदालत को समग्र परिदृश्य को ध्यान में रखकर ही विचार करना चाहिए।

Date:09-06-23

कनाडा में घिनौनी हरकत

संपादकीय

कनाडा में बेलगाम होते खालिस्तान समर्थकों की गतिविधियां किसी से छिपी नहीं, लेकिन अब उनका दुस्साहस इतना अधिक बढ़ गया है कि वे इंदिरा गांधी की हत्या का खुलेआम जश्न भी मनाने लगे हैं। कनाडा के ब्रैंपटन शहर में खालिस्तान समर्थकों ने जिस तरह एक परेड निकाली और उसमें इंदिरा गांधी की हत्या करते हुए दिखाया गया, वह बेहद शर्मनाक और घिनौना है। यह परेड करीब पांच किमी तक निकाली गई। स्पष्ट है कि कनाडा की पुलिस आतंक का महिमामंडन करने वाली इस घिनौनी परेड को चुपचाप देखती रही। आतंकवाद का ऐसा खुला और नग्न समर्थन कनाडा के साथ सभ्य समाज को शर्मसार करने वाला है। इसमें संदेह नहीं कि कनाडा में यह शर्मनाक घटना इसीलिए घटी, क्योंकि वहां की सरकार खालिस्तान समर्थकों को बढ़ावा देने में लगी हुई है। इसी के चलते उनका दुस्साहस बढ़ता चला जा रहा है। कनाडा में खालिस्तान समर्थक कभी भारतीय उच्चायोग को घेरते हैं, कभी भारतीयों पर हमले करते हैं और कभी मंदिरों को निशाना बनाते हैं। कनाडा सरकार हर बार इन खालिस्तानी चरमपंथियों के खिलाफ कार्रवाई करने की बात कहकर चुप्पी साध लेती है। उसके इसी रवैये के कारण कनाडा खालिस्तान समर्थक अपराधियों और आतंकियों का पसंदीदा ठिकाना बन गया है। ऐसे न जाने कितने अपराधी और आतंकी हैं, जो कनाडा में रहकर पंजाब में हिंसा और आतंक फैलाने की साजिश रचते रहते हैं। कनाडा सरकार ऐसे तत्वों के खिलाफ कभी कुछ नहीं करती।

इंदिरा गांधी की हत्या का जश्न मनाने वाले कृत्य पर इससे संतुष्ट नहीं हुआ जा सकता कि भारत में कनाडा के उच्चायुक्त ने यह कहा कि इस शर्मनाक प्रकरण से वह हैरान-परेशान है और उनके देश में घृणा के महिमामंडन के लिए कोई जगह नहीं। यह बयान लीपापोती के अलावा और कुछ नहीं, क्योंकि सच यही है कि कनाडा में खालिस्तान समर्थकों की कट्टरता और नफरत को पालने-पोसने का काम बड़ी ही बेशर्मी से किया जा रहा है। वैसे तो उग्रपंथी खालिस्तान

समर्थक दुनिया के कई देशों में सक्रिय हैं, लेकिन वे जितने कनाडा में बेलगाम हैं, उतने अन्यत्र कहीं नहीं। इसका कारण यह है कि कनाडा की वर्तमान सरकार उस राजनीतिक दल के समर्थन के भरोसे सत्ता में है, जिसमें खालिस्तान समर्थक भरे पड़े हैं। कनाडा की सरकार संकीर्ण राजनीतिक कारणों से खालिस्तान समर्थकों की अराजक और नफरत फैलाने वाली हरकतों की जानबूझकर अनदेखी कर रही है। यह अच्छा हुआ कि विदेश मंत्री एस.जयशंकर ने बिना किसी लाग लपेट कहा कि कनाडा की धरती का इस्तेमाल भारत विरोधी गतिविधियों के लिए हो रहा है और वहां खालिस्तान समर्थकों को मिल रहे समर्थन से दोनों देशों के संबंध खराब हो सकते हैं। चूंकि इसके आसार कम हैं कि भारत सरकार की आपत्ति के बाद कनाडा सरकार खालिस्तान समर्थक अराजक तत्वों को समर्थन देने से बाज आएगी, इसलिए यह आवश्यक है कि उस पर कूटनीतिक दबाव बढ़ाया जाए।

दैनिक भास्कर

Date:09-06-23

मजदूरों की घटती आय योजनाओं पर प्रश्नचिह्न है

संपादकीय

केंद्र सरकार के लेबर ब्यूरो के आंकड़े बताते हैं कि पिछले आठ वर्षों में कृषि श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी मात्र 0.8% प्रति वर्ष की दर से बढ़ी जबकि गैर-कृषि मजदूरों की 0.2% की दर से। इसके उलट निर्माण-श्रमिकों की कोरोना- पूर्व काल में 0.53 और कोरोना- उत्तर काल में 0.02 की दर से हर साल घटी है। जरा सोचें, ऑक्सफाम की इस वर्ष की रिपोर्ट बताती है कि इन्हीं आठ वर्षों में देश के ऊपरी वर्ग के एक प्रतिशत की संपत्ति में दस गुना इजाफा हुआ है। संविधान 'राज्य के नीति निर्देशक तत्व' शीर्षक अध्याय के अनुच्छेद 38 (2) में राज्य को ताकीद करता है कि वह व्यक्तियों के बीच आय में असमानता कम करने का प्रयास करेगा। लेकिन 70 साल के बाद भी देश की आर्थिक नीतियां ऐसी रहीं कि गरीब-अमीर के बीच की खाई बढ़ती जा रही है। अगर एक साल बाद एक खेत मजदूर की वास्तविक क्रय-शक्ति मात्र 100 रुपए की जगह 100.80 पैसा बढ़े और अगले दस वर्षों तक यही दर रहे तो वह अपने परिवार का भरण-पोषण, शिक्षा, स्वास्थ्य और शादी-ब्याह कैसे करेगा? फिर इसी आर्थिक विपन्नता से छुटकारा पाने के लिए वह भागकर शहर में निर्माण मजदूर बनता है । कहने को तो श्रम मंत्रालय भी है और तमाम श्रम कल्याणकारी योजनाएं भी, लेकिन कोरोना संकट ने इन सबकी पोल खोल दी थी।

राष्ट्रीय सहारा

Date:09-06-23

एमएसपी में बढ़ोतरी

संपादकीय

सरकार ने वुधवार को खरीफ फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) स औसतन 7 से 10 फीसद बढ़ाने संबंधी घोषणा की। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता में आर्थिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति (सीसीईए) ने फसल वर्ष 2023-24 में उगाई जाने वाली और खरीफ विपणन सत्र (अक्टूबर- सितम्बर) में खरीदी जाने वाली सभी अनिवार्य खरीफ फसलों के एमएसपी को मंजूरी दे दी। प्रधामंत्री नरेन्द्र मोदी का कहना है कि इससे अन्नदाताओं को उपज कालाभकारी मूल्य मिलने के साथ ही फसलों में विविधता लाने के प्रयासों को भी वल मिलेगा। खाद्य मंत्री ने समिति की बैठक के उपरांत संवाददाताओं को बताया, 'किसानों को एमएसपी में वृद्धि से ऐसे समय में लाभ होगा जब खुदरा मुद्रास्फीति में गिरावट की प्रवृत्ति दिख रही है।' धान का न्यूनतम समर्थन मूल्य 143 रुपये वढ़ाकर इस खरीफ सत्र में 2,183 रुपये प्रति क्विंटल करने की घोषणा की गई है। यह पिछले एक दशक में दूसरी सबसे बड़ी वृद्धि है। वित्त वर्ष 2018-19 में धान के एमएसपी में सर्वाधिक 200 रुपये की वृद्धि की गई थी। गौरतलव है कि कृषि लागत एवं मूल्य आयोग (सीएसीपी) की सिफारिशों के आधार पर विभिन्न फसलों का एमएसपी तय किया जाता है ताकि किसानों को उपज का लाभकारी दाम मिलना सुनिश्चित हो सके और वे फसल के विविधीकरण के लिए भी प्रेरित हों। वेशक, एमएसपी में वढ़ोतरी के अलावा सरकार हर जतन करने को तत्पर रहती है, जिससे किसान की स्थिति बेहतर हो । एमएसपी में वृद्धि से किसान को फायदा मिलना तय है। इसलिए कि खुदरा महंगाई में गिरावट की प्रवृत्ति देखी जा रही है। अरहर, उड़द और मसूर के लिए मूल्य समर्थन योजना (पीएसएस) के तहत 40 फीसद खरीद की सीमा हटाने का फैसला सरकार पहले ही कर चुकी है । अव किसान मनमर्जी मात्रा में दाल वेच सकेंगे। पीएसएस तभी लागू होता है, जब कृषि जिंसों के दाम एमएसपी से नीचे चले जाते हैं। इस फैसले से किसान दालों की पैदावार बढ़ाने के लिए प्रेरित होंगे और दालों का रकवा भी बढ़ेगा। गौरतलब है कि बाजार के दवावों से किसान हमेशा प्रभावित और व्यथित रहे हैं। उन्हें दवावों के असर से बचाने के लिए 1965 में कृषि अर्थशास्त्री डॉ. धर्म नारायण की अध्यक्षता में कृषि मूल्य आयोग गठित किया गया जो आज सीएसीपी के नाम से जाना जाता है। आयोग तमाम लागतों का आकलन करके दाम के संबंध में सिफारिश करता है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:09-06-23

सबसे अच्छे दौर में भारत-अमेरिका संबंध

प्रशांत झा, (हिन्दुस्तान टाइम्स संवाददाता, अमेरिका)

आज से पंद्रह साल पहले भारत और अमेरिका ने असैन्य परमाणु समझौते को अंतिम रूप दिया था। यह समझौता सिर्फ परमाणु ऊर्जा के बारे में नहीं था, बल्कि यह द्विपक्षीय रिश्तों की एक बड़ी बाधा को दूर करने और संभावित चीनी आक्रामकता के मद्देनजर नई दिल्ली व वाशिंगटन को रणनीतिक रूप से एक-दूसरे के करीब लाने के लिए था। तब से रक्षा, सुरक्षा और खुफिया सूचनाओं की साझेदारी समेत तमाम क्षेत्रों में दोनों देशों के रिश्ते लगातार मजबूत हो रहे हैं। जिस बात ने जॉर्ज डब्ल्यू बुश को इस कूटनीतिक पूंजी निवेश की खातिर और मनमोहन सिंह को अपनी सरकार तक को दांव पर लगाने के लिए प्रेरित किया, वह अब अपने तार्किक निष्कर्ष पर पहुंच रहा है, और यह 2008 के बरक्स दो अलग-अलग पार्टियों की दो अलग सियासी हस्तियों, जो बाइडन और नरेंद्र मोदी के शासन में हो रहा है। तीन कारक इस बदलाव को मुमकिन बना रहे हैं।

पहला कारक है राजनीतिक स्पष्टता और प्रतिबद्धता। राष्ट्रपति बाइडन ने यह राजनीतिक नजरिया अपनाया है कि भारत एक अहम खिलाड़ी है और हिंद-प्रशांत क्षेत्र में अमेरिकी नीति के लिहाज से नई दिल्ली के साथ संबंधों में सुधार बहुत जरूरी है। ठीक है, भारत सहयोगी न बने; पर एक साझेदार के रूप में वह शायद कहीं अधिक प्रभावी हो सकता है। बाइडन प्रशासन ने तय किया है कि वह भारतीय लोकतंत्र के आलोचकों को अमेरिकी राष्ट्रीय सुरक्षा के रुख को परिभाषित करने नहीं देगा। राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद से लेकर विदेश विभाग और पेंटागन तक के अधिकारियों का कहना कि उन्हें ऊपर से स्पष्ट निर्देश है- भारत के साथ कारगर रिश्ते बनाएं, वरना एक नीति-नियंता के शब्दों में, 'हमारे पोते-पोतियों पर चीनियों का राज होगा।' विरोधाभासी रूप से यूक्रेन मसले पर दोनों देशों के बीच के मतभेद ने इस सोच को और पुख्ता ही किया है, क्योंकि वाशिंगटन ने यह महसूस किया है कि शीतयुद्ध के दौरान की उसकी गलत नीतियों ने दशकों तक भारत को रूस के करीब जाने को बाध्य किया।

ऐसे में, द्विपक्षीय सहयोग को गहरा करके और खेल के नए नियम निर्धारित कर पुरानी गलतियों को दुरुस्त करने का यही क्षण था। राष्ट्रपति बाइडन ने नई दिल्ली पर एक मित्र के तौर पर व्यवस्थित रूप से दीर्घ अवधि के लिए दांव लगाया। प्रवासी भारतीयों का बढ़ता रुतबा भी इसमें मददगार साबित हुआ है। तथ्य यही है कि अमेरिकी राजनीति में भारत कोई बोझ नहीं है, बल्कि दोनों मुख्य पार्टियों के लिए अहमियत रखता है।

जहां तक भारतीय पक्ष का सवाल है, तो शी जिनपिंग ने अपने कदमों से उसके लिए निर्णय करना आसान कर दिया। साल 2014 में चुमार में घुसपैठ, 2016 में परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह में भारत के लिए बाधा पैदा कर, 2017 में डोकलाम और 2020 में पूर्वी लद्दाख में शी जिनपिंग की कार्रवाइयों ने यह तय कर दिया कि भारत का प्रमुख भू-राजनीतिक विरोध चीन के साथ ही है, और नई दिल्ली अब इस बात को बहुत छिपा नहीं सकती थी। फिर भारत को अपनी क्षमताओं के विस्तार, चीन के साथ अपने अंतर को पाटने के लिए; सुरक्षा खतरों के प्रबंधन में अमेरिकी पूंजी, प्रौद्योगिकी, खुफिया व राजनयिक समर्थन जरूरी है। इसलिए प्रधानमंत्री मोदी ने मौजूदा व भविष्य के भागीदार के रूप में वाशिंगटन पर दांव लगाया है। भारतीय राजनीति में भी अमेरिका अब कोई बोझ नहीं है।

दूसरा कारक है, कूटनीतिक जुड़ाव का पैमाना। सिर्फ 2023 में भारत व अमेरिका के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार, अजीत डोभाल और जेक सुलिवन वाशिंगटन व रियाद में मिले हैं। भारतीय विदेश मंत्री एस जयशंकर और अमेरिकी विदेश मंत्री एंटोनी ब्लिंकन की अक्सर बातचीत होती है और वे नई दिल्ली व हिरोशिमा में मिल चुके हैं। हाल ही में वाणिज्य मंत्री

पीयूष गोयल व्यापार वार्ता के लिए वाशिंगटन आए थे, उनकी अमेरिकी समकक्ष जीना रायमोंडो भी नई दिल्ली का दौरा कर चुकी हैं। भारतीय वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण और अमेरिकी ट्रेजरी सचिव जेनेट येलेन इस साल अब तक दो बार मिल चुकी हैं। इसी हफ्ते अमेरिकी रक्षा मंत्री ने अपना भारत दौरा पूरा किया है। दोनों देशों के जुड़ाव का यह पैमाना उन लोगों के अनुमान से कहीं अधिक गहरे बदलाव की ओर ले जाता है, जो सरकार के बाहर रहकर इसे देखने की कोशिश कर रहे हैं।

तीसरा कारक है साझा एजेंडा। क्रिटिकल ऐंड इमर्जिंग टेक्नोलॉजीज यानी आईसीईटी के क्षेत्र में पहल दोनों देशों की रणनीतिक साझेदारी में अगला कदम है। इसी ने परमाणु समझौते का मार्ग प्रशस्त किया था। आईसीईटी भारत-अमेरिकी संबंधों को परिभाषित करने वाला ढांचा होगा। अमेरिकी रक्षा मंत्री ऑस्टिन की यात्रा ने आईसीईटी में निहित रक्षा औद्योगिक रोडमैप के विचार को आगे बढ़ाया है। दरअसल, भारत अपना सैन्य औद्योगिक परिसर विकसित करना चाहता है। उसका यह सपना अमेरिकी पूंजी और तकनीकी हस्तांतरण पर टिका है; तो वहीं भारत को अपने व्यापक रक्षा ढांचे से जोड़ने का अमेरिका का सपना भी तभी साकार होगा, जब वह निर्यात पर नियंत्रण में लचीलेपन और भारत में निवेश करने के लिए अपने निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित करने की ओर बढ़ेगा। दोनों देश अपने 'डिफेंस इनोवेशन इकोसिस्टम' को जोड़ने जा रहे हैं और स्टार्टअप को बढ़ावा देने के लिए एक कोष स्थापित करने वाले हैं।

भारत व अमेरिका के कूटनीतिक इतिहास में पहली बार एशिया भर में उनके हितों में एकरूपता दिख रही है। दोनों देश इजरायल की एकता और अब्राहम समझौते की सफलता चाहते हैं। दोनों सऊदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात में जारी बदलावों के महत्व को पहचानते हैं। दोनों एक स्थिर ऊर्जा बाजार चाहते हैं।

भारत के बिना हिंद-प्रशांत और क्वाड बेमानी हैं। सार्वजनिक बयान भले अलग-अलग हों, पर न तो नई दिल्ली और न ही वाशिंगटन एक ऐसा एशिया चाहता है, जिसमें चीन मनमानी करे। संकट के वक्त इन दोनों देशों की प्रतिक्रिया क्या होगी, यह इनके रिश्ते को आंकने का शायद सटीक पैमाना नहीं है; तथ्य यह है कि भारत और अमेरिका परेशानी के स्रोत पर सहमत हैं और उस चुनौती से निपटने के लिए वे किस हद तक सहयोग करेंगे, इसकी दूरियां पाट रहे हैं, यही अपने आप में उल्लेखनीय प्रगति है। जिस तरह वाशिंगटन मोदी की यात्रा की तैयारी में जुटा है, उसे देखते हुए कह सकते हैं कि भारत-अमेरिका संबंध अपने अब तक के सबसे अच्छे दौर में प्रवेश करने जा रहा है।

THE TIMES OF INDIA

Date:09-06-23

Rain, RBI, GOI

Progress of the southwest monsoon will influence food prices. Inflation remains a latent threat

TOI Editorials

The southwest monsoon swept over Kerala yesterday as RBI announced its monetary policy resolution in Mumbai. The monsoon's eight days behind schedule. To put it in a spatial context, by now in a normal year it would have crossed Goa on the west coast. RBI's assessment of inflation is influenced by the southwest monsoon. Its decision to keep its policy rate, repo, constant at 6. 5% was widely expected. What was more interesting was the central bank's assessment of the inflation trajectory for the rest of the year.

India's retail inflation cooled off over the last two months. It was 4. 7% in April and 5. 7% in March, partly on account of lower food prices. However, among food items, the price trend hasn't been uniform. Milk is dealing with supply challenges and RBI highlighted it. Also, cereal has been inflating in double digits for a while. This is where the monsoon comes into play as rice is the most important cereal by output. GOI data showed that in 2022-23, paddy output was a record 135. 5 million tonnes. However, preliminary acreage data for this year was worrisome.

On June 2, paddy acreage was 2. 17 lakh hectares, a decline of 26. 5% in relation to the previous year. The delay in the onset of the monsoon is bound to have influenced the low acreage. In this backdrop, it's pertinent that GOI accepted the recommendation of the commission for agricultural costs and prices to enhance paddy's MSP for the current kharif season by 7% to Rs 2,183/quintal. It's too early to gauge the impact of the monsoon on agricultural prices. What's certain is that the regional pattern of rainfall and its volume in July will have a significant bearing on food inflation.

Besides the monsoon, RBI's policy statement yesterday also showed that firms expect inflation to trend upwards. The early results of the central bank's survey of firms showed that they expect both input costs and output prices to harden. Given these uncertainties, RBI's average inflation forecast for 2023-24 was 5. 1%, a tad lower than what it expected two months ago. In short, the economy is not yet past the point where inflation is no longer a threat to macroeconomic stability. However, on the supply side, price-cooling levers are all in GOI's hands. RBI's interest rate weapon can't and shouldn't be used any time soon.

Date:09-06-23

Let Goa Be

The state's syncretic culture makes it unique and brings in revenue. CM Sawant should know it better than most

TOI Editorials

Goa CM Pramod Sawant appears to be trying hard to open up a new political plank by stating that it was time to wipe out signs of Portuguese culture from the state. Sawant cited accounts of how the 400-year-old Portuguese colonial rule over Goa had seen destruction of temples and other centres of local culture. In fact, he made a point of restoring these historical sites by allocating Rs 20 crore for the effort last year. Restoration is fine. However, if Sawant's goal is to erase the syncretic culture that makes Goa a marvellous part of the India tapestry, he will do a great deal of harm to Goan society.

Politicians often conflate historical events with cultural evolution. While the two can be inter-related, they are separate processes. No one can predict how culture evolves. Though the injustices of the Portuguese colonial rule are undeniable, the amalgamation of Portuguese and local Goan cultures continues to be a wonderful lived reality. The influence of this syncretism can be seen in everything from Goan cuisine to festivals and architecture. The Churches and Convents of Goa even enjoy Unesco World Heritage status. This is what makes Goa unique and draws international tourists to this beautiful state. And with tourism contributing roughly 18% of Goa's net state domestic product, is Sawant willing to forgo this source of revenue for his state's people?

Plus, there is nothing to suggest popular resentment to things Portuguese. In fact, Sawant's own government has been trying to enhance collaboration with Portugal and is even striving to ink an MoU on tourism and IT with Lisbon. There is also an understanding on Portuguese technical support in water supply, education, shipbuilding and engineering. Therefore, Sawant's pitch doesn't square with Goa-Portugal relations today. Trying to change Goa's identity will be a self-goal for Sawant and a big loss for Goa.

Date:09-06-23

One World One Health

Union health minister writes on how India can help G20 make global healthcare a unified digital public good

Mansukh Mandaviya

Imagine a world without the internet today, where computer networks didn't talk to each other. People in one country might continue to reinvent the wheel in use for years in another part of the world. Without a standardised internet protocol, our version of reality would have looked radically different – one with many local area networks but no common internet to plug into.

This alternate reality is similar to the flux in the digital health space today. On the edge of disruptive technologies, it awaits direction, standardised framework and a decisive nudge from the international leadership to ensure innovations can be scaled up to benefit billions in the Global South.

The exciting world of digital health is brimming with small but powerful pilots and innovations across subsectors. Some of these are smart wearables, internet of things, virtual care, remote monitoring, artificial intelligence, big data analytics, blockchain, tools enabling data exchange, storage and remote data capture.

But without a unified global vision, all of it is stuck in a fragmented ecosystem. This, when the pandemic has shown the enormous potential of digital healthcare tools.

Digital tools, public good

India has experienced transformative digital tools in public health. During the Covid pandemic, platforms like CoWIN and eSanjeevani were game-changers in the delivery of vaccines and healthcare services.

CoWIN, Covid vaccination programme's digital backbone, tracked the logistics of vaccines. It registered people to be vaccinated and generated digital certificates as proof of vaccination.

By reducing the information asymmetry between people and the system, CoWIN democratised the vaccination drive. Rich or poor, everyone had the same access. Realising the potential of the open-source tool, PM Modi offered it to the world as a digital public good.

Similarly, eSanjeevani, the telemedicine platform allowed online consultations with doctors from home. It has handled over 10 crore consultations. At its peak, it handled over 5 lakh consultations a day.

A digitally enabled Covid war room helped make real-timepolicy decisions. A specialised surveillance system tracked the disease by geography and monitored inventories for essential supplies, predicting demand at national, state and district levels based on caseloads. Aarogya Setu, RT-PCR app and other digital tools allowed for data to inform policy that strengthened India's Covid response by an order of magnitude.

To exploit the potential of digital tools in public health, India is building a national digital health ecosystem – Ayushman Bharat Digital Mission (ABDM). It empowers patients to store and access medical records, share these with healthcare providers and ensure treatment.

It helps patients access accurate information on health facilities and service providers. India under PM Modi is willing to share its learnings and resources to build similar digital health ecosystems for the world, particularly lowand middle-income countries. Here, vulnerable people can derive benefits of cutting-edge digital solutions. The dream of universal healthcare coverage can come true.

Open access, remove barriers

Access to digital solutions is blocked by copyright regimes and proprietary systems. Most transformative digital solutions are not easily accessible because they are unevenly distributed in terms of language, content, and infrastructure.

Even where digital public goods or open-source solutions exist, their utility is limited as they're bound toa platform, data and logic, for which no global standards exist. There is no global governance framework for digital health that can ensure interoperability across systems and address concerns around data security and privacy.

Independent efforts to create global standards around digital health exist but operate in silos, and are largely uncoordinated without any support for their enforcement.

If the global community resolves to converge its efforts under one umbrella, G20 is the platform to build a future-ready vision for digital health.

Consolidate efforts, ensure coverage

Imagine the tremendous potential that can be unlocked if we build and implement a global blueprint for digital health. For that we need to:

1. Converge the many scattered ongoing efforts into a global initiative on digital health, institutionalise a governance framework.

2. Collaborate on a protocol as had been done for the internet decades ago.

3. Identify and scale up promising digital solutions as digital public goods.

4. Bring on board all stakeholders.

5. Build trust for global exchange of health data and find ways to fund such initiatives.

With the presidency of G20, India will strive to build consensus on some of these issues with mechanisms to operationalise them. All it takes to script a breakthrough in digital health is to place collective good over narrow interests; to grasp that the 'universe' in Universal Healthcare Coverage extends beyond own countries.

What must drive intention and action in G20 is Vasudhaiva Kutumbakam: the universe is a family. And it is our responsibility to secure the health of that family. Whatever the cost.

THE HINDU

Date:09-06-23

Another low

Canada is doing very little to address India's concerns on Sikh extremism

Editorial

A tableau, in Brampton, Canada, glorifying the assassination of former Prime Minister Indira Gandhi, has expectedly caused outrage across the polity in India. The tableau was part of an annual parade by Canadian Sikh separatist or "Khalistani" groups to mark their protest against Operation Bluestar, in 1984.

An accompanying poster termed the killing as an act of "revenge". Political leaders in India have called for Canada to apologise and to acknowledge the dangers of the rise of anti-Indian separatist and extremist forces. External Affairs Minister S. Jaishankar said the incident was part of a broader pattern, indicating that these forces pose a real challenge not only to the India-Canadian relationship but also to Canada itself. He suggested that the failure to act against these groups was due to a desire to cater to Canadian "vote-banks" that the much broader community of about 8,00,000 Sikhs constitute. He added that the culture of validating violence as an acceptable form of protest was one that should concern Canada's leadership as well, given past incidents such as the bombing of an Air India flight in 1985. India-Canada relations have been fraught over similar issues, as India has been protesting incidents of vandalism and anti-India and anti-Modi graffiti on temples and community centres there, as well as over Canadian Prime Minister Justin Trudeau's remarks criticising the Narendra Modi government's treatment of Punjab farmers who were protesting the 2020 agriculture Bill. As a result, India had called off high-level engagements and virtually snapped communications between New Delhi and Ottawa for several months, before they were restored.

The latest provocation could well lead to another such spiral, and both governments need to resolve the issues diplomatically if they want to avoid another nadir in bilateral ties. While the Canadian government is within its rights to protect free speech and expression in its country, it must understand India's concern that tableaus that glorify the assassination of a Prime Minister constitute inflammatory hate speech, and could fuel radicalism. Meanwhile, instead of seeking to shut down protests which are legal, or issuing démarche over every act of vandalism, it would be more productive if New Delhi is able to cooperate and share evidence of the extremist activity and terrorist acts such groups are conspiring on. Given that Khalistani protests have been seen in Australia, the United Kingdom, the United States and parts of Europe, the Modi government must now chalk out a broader diplomatic strategy to ensure a more effective way of dealing with the problem, which could even be discussed with the leaders of all these countries, who are expected to visit India in September for the G-20 summit.

Date:09-06-23

Bridging the growing trust deficit in Manipur

Any changes introduced in Manipur should be a natural evolution from the past, keeping in mind the sensitivities of the State's communities

K.V. Madhusudhanan, [A former Inspector-General, Central Reserve Police Force (CRPF), was the chief of the North Eastern Sector of the CRPF]

Manipur, with over 35 communities inhabiting its valleys and hills, has a history of violence and deadly clashes. Ethnic violence has been brewing in the State for sometime as mutual suspicion between ethnic groups in the Imphal valley and the hills turned into simmering conflict between the Meiteis and the Kukis, especially after the order of the Manipur High Court on March 27, asking the State to recommend Scheduled Tribe (ST) status to Meiteis. Before this, the Manipur government had begun a drive to evict tribal villages from reserved forests, which was perceived to be an anti-tribal move, in turn leading to discontent and suspicion among the Kukis and other tribals. Hundreds of Kuki tribals have been dislodged from their traditional settlement areas without rehabilitation. The Kukis, with 10 MLAs in the

60-member Legislative Assembly, and the Kuki People's Alliance being a part of the ruling coalition under the Bharatiya Janata Party government in the State, did not make any difference.

Community dynamics and tensions

This is not to say that the claims made by the Meiteis have no merit. They form 52% of the State's population but are restricted to 10% of the geographical area, that is the Imphal valley. While relocating from hill to valley is legal, they cannot shift and relocate themselves (most are Vaishnav Hindus) because of their non-inclusion in the ST category to the hill area — 90% of which is occupied by Nagas and Kukis. There are some Meiteis who think that their Hindu identity has brought them no political and economic benefits; on the contrary, this has become a liability as they are not treated as STs, and are deprived of the right to occupy 90% of the territory of the State.

Their grouse is not about the deprivation of jobs and political clout as they are disproportionately ahead of the hill people in these matters. The land issue is more crucial for them. It is worth recalling that the Meiteis have had a chequered history of violence and struggles before integration with India and acquiring the Hindu tag. They had sought to project a pan-Mongoloid identity, rejected the Bengali script and even tried to revive an old Meitei religion called Sanamahism. They formed several insurgent groups such as the People's Liberation Army, with bases in Bangladesh and Myanmar. They also protested against the presence of Mayangs (outsiders), which included Manipur Muslims called Pangals. Predictably, the Pangals formed the radical North East Minority Front.

While steps such as protracted military operations, peace talks and political negotiations, improved means of communication in the region, development and the granting of Statehood, almost brought about a total integration with mainstream India, it is the trust deficit propelled by the hasty implementation of the Land Act and the High Court order that has resulted in it going back to square one and the old days of the insurgency. The only difference now is that the mindless violence is between the two ethnic groups, and not against the government or agencies representing the government.

Restoring peace

Once again, the solution lies in military operations, at least till the intensity and the spread of the violence is controlled. The Indian Army, the Central Reserve Police Force (CRPF), the Border Security Force and even the Indian Air Force have been deployed. The Union Home Minister has returned to Delhi after camping in Manipur and presiding over the peace process. A former Director-General of the CRPF has been sent to Imphal as security adviser. An officer of the Tripura cadre, now serving as Inspector General, CRPF, is tipped to take over as Director-General, Manipur. Combing operations are on and relief camps are in place. The perpetrators of the violence are facing strict action. But hundreds have died and property worth crores has been destroyed. The panic continues. There are rumours that thousands of weapons which include AK-47s have been looted by Meities and Kukis have also looted weapons from the police in their area of influence. The views expressed by the Union Home Minister, the Indian Army chief and the Security Adviser that the violence is the result of ethnic clashes between two groups have not succeeded in undoing the impact of the statement of the Chief Minister 'that 40 Kuki terrorists' have been killed in operations. The Centre's stand and the presence of the Army and central forces are restoring the confidence of the Kukis.

Undo the damage

Until Independence, much of northeast India was little explored and little understood. It was perceived to be 'another world', affected by years of insurgency and violence. But, of late, while other parts of the country have seen episodes of terror and violence, it is this region that has been peaceful. Its people have discovered their essential unity with the rest of the country. And, they are beginning to realise that they have vital contributions to make to the rest of India.

The administrative and judicial interventions of the immediate past have proved to be very costly whatever be the justification. The changes should be a natural evolution from the civilisation of the past, absorbing the sensitivities of the tribals, their susceptibilities, including a propensity to resort to violence when provoked. While military and administrative steps seem to be the only and immediate options, enough care should be taken to undo the damaging steps that have created the trust deficit, which is the root cause for the turmoil now.